बुद्धवर्ष २५४४, भाद्रपद पूर्णिमा, १३ सितंबर, २००० वर्ष ३० अंक ३

धम्मवाणी

आनण्यसुखं ञत्वान, अथो अत्थिसुखं परं।
भुञ्जं भोगसुखं मच्चो, ततो पञ्ञा विपस्सति॥
विपस्समानो जानाति, उभो भागे सुमेधसो।
अनवज्जसुखस्सेतं, कलं नाग्घति सोळसिं॥

अं. नि. १.४.६२

विपश्यी साधक उऋणसुख को, संपदा के अस्तित्व के सुख को और संपदा के भोगसुख को तथा उनके अनित्य स्वभाव को विपश्यना साधना द्वारा प्रज्ञा से जान लेता है। फिर शीलसंपन्न होने के सुख को भी विपश्यना द्वारा जान कर यह भलीभांति समझ लेता है कि इन दोनों में क्या अंतर है। याने उऋणसुख, संपदासुख, भोगसुख तीनों मिल कर अनवद्य (=निर्दोष) शीलसुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।

दुःखनिवारक सुखप्रसारक बुद्ध

राजकुमार सिद्धार्थ गौतम द्वारा गृहत्यागने के प्रसंग को लेकर यह एक आलोचनाभरी टिप्पणी सामने आयी –

"संन्यासियों में जो लोग दूसरों के उपकार के लिए घर छोड़ कर निकलते हैं, उनका बाहर निकलना सार्थक है।..."

"गौतम सिद्धार्थ सत्य की खोज में संसार छोड़ कर निकल पड़े थे। इसी कारण उसका घर छोड़ना बिल्कुल युक्तियुक्त नहीं था।"

इसका अर्थ यह हुआ कि गौतम सिद्धार्थ ने दूसरों के उपकार के लिए घर नहीं छोड़ा। केवल सत्य के बारे में अपना कौतूहल पूरा करने के लिए घर छोड़ा। अथवा यह मान लें कि उसने केवल अपने उपकार के लिए घर छोड़ा। अतः उनका घर छोड़ना सार्थक नहीं था, युक्तियुक्त नहीं था। यह टिप्पणी पढ़ कर दुखद आश्चर्य हुआ कि अपने देश के प्रखर बुद्धशाली लोगों के मानस में भी बुद्ध के जीवन की वास्तविकताओं के बारे में कितनी भ्रांतियां समायी हुई हैं। स्पष्ट है कि देश में मूल बुद्धवाणी के लुप्त हो जाने का ही यह दुःखद परिणाम है। बुद्धवाणी के अध्ययन से ऐसी निराधार भ्रांतियां स्वतः दूर हो जाती हैं।

राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने उन्तीस वर्ष की युवावस्था में जब जरा, व्याधि और मृत्यु की सच्चाइयां देखी तब वह इसलिए व्याकुल नहीं हुआ कि एक दिन उसकी भी यही दशा होने वाली है। वास्तविकता यह है कि उसके मन में सभी प्राणियों के प्रति करुणा जागी क्योंकि उसने जाना कि जन्म लेने वाले सभी प्राणी इन दुःखों में से गुजरते हैं। प्रश्न मन में यह उठा कि क्या इन दुःखों से छुटकारा पाने का कोई उपाय है? साथ-साथ मन में यह विश्वास भी जागा कि –

यथापि दुक्खे विज्जन्ते, सुखं नामा'पि विज्जति।

– जहां इतने दुःख विद्यमान हैं वहां (परम) सुख भी विद्यमान है ही।

एवं एव जाति विज्जन्ते, अजाती'पि इच्छितब्बकं।

– जहां (बार-बार का) जन्म विद्यमान है वहां वांछित अजन्मावस्था भी विद्यमान है ही।

एवं किलेसपरिरुद्धो, विज्जमाने सिवे पथे।

– इसी प्रकार पापजन्य क्लेशों से घिरे हुओं के लिए मंगलमयी मुक्ति का पथ भी विद्यमान है ही।

परियेसिस्सामि तं मग्गं भवतो परिमुत्तिया।

– मुझे उसी मार्ग की खोज करनी है जो भवसंसरण से मुक्ति दिलाता है।

मुक्तिपथ की यह गवेषणा केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि संसारसंसरण से उत्पीड़ित सभी प्राणियों के लिए थी।

किं मे एकेन तिण्णेन, पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवकं॥

– विपुल पुरुषार्थ द्वारा सत्य दर्शन करके मेरे अकेले के तर जाने से क्या होगा? मैं सम्यक संबोधि की सर्वज्ञता प्राप्त करके अनेक देव-मनुष्यों के तरने में सहायक बनूं।

ऐसे उदात्तभाव उसके मन में जागने स्वाभाविक थे, क्योंकि

यही भाव अनेक जन्मों से उसके मानस में समाये हुए थे। इस शुभ संकल्प के कारण ही वह असंख्य कल्पों तक बोधिसत्व के रूप में भवभ्रमण करते आ रहा था और प्रत्येक जन्म में तत्कालीन प्राणियों के हितसुख में संलग्न रहते हुए पर्याप्त मात्रा में अपनी सारी पारमिताएं परिपूर्ण कर रहा था।

अब उस बोधिसत्व का यह अंतिम जन्म था। संबोधि जगा कर उसे अपने आप को भवमुक्त करना था तथा औरों की मुक्ति में सहायक बनना था। यह सच है कि अपने आपको मुक्त करना उसकी प्राथमिक आवश्यकता थी। जो स्वयं अंधा हो वह अन्य अंधों को कैसे रास्ता दिखा सकेगा? जो स्वयं लंगड़ा हो वह अन्य लंगड़ों को कैसे सहारा दे सकेगा? जो स्वयं बंदी हो वह अन्य बंदियों को कैसे मुक्ति का मार्ग बता सकेगा? अतः गृह त्यागने का अभिप्राय परम सत्य जानने का कौतूहल पूरा करना नहीं था और न ही केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना था, प्रत्युत अनेकों के हितसुख के लिए था। इस सच्चाई को जाने समझे बिना बोधिसत्व सिद्धार्थ पर व्यंग कसना कितना दुर्भाग्यपूर्ण हुआ।

उसे इसलिए भी लांछित किया गया कि उसने परमसत्य की खोज के लिए घर क्यों छोड़ा? यह सच है कि परम सत्य सर्वानुस्युत है, सबके अपने साथ जुड़ा हुआ है। परंतु अपने भीतर के उस परमसत्य का साक्षात्कार करने की विधि तो लुप्त हो ही चुकी थी। उस विधि की खोज के लिए घर छोड़ना आवश्यक था। यदि यह मुक्तिदायिनी विपश्यना विद्या उस समय कायम होती तो उसे खोजने की आवश्यकता नहीं होती। परंतु कोई सम्यक संबुद्ध उसी काल में उत्पन्न होता है जब कि संसार से विपश्यना विद्या नितांत विलुप्त हो चुकी होती है। केवल पहले से आठवें तक के लौकिक ध्यान बचे रहते हैं। वे भी सर्वानुस्युत हैं अतः भ्रांति पैदा करते हैं। लोग उनमें से किसी एक के सुख को, आज की भाषा में आनंद को परम सुख स्वरूप मान कर संतुष्ट रहते हैं। इंद्रियातीत लोकोत्तर अवस्था तक पहुँचाने वाली विपश्यना विद्या विलुप्त हो जाती है। बोधिसत्व अपने परिश्रम पुरुषार्थ द्वारा उसे पुनः खोज निकालता है।

यह सच्चाई भी ध्यान देने योग्य है कि बोधिसत्व सिद्धार्थ गौतम ने जीवनजगत की इन तीन दुःखद सच्चाइयों को देखने के बाद एक श्रमण को भी देखा। किसी शांतचित्त श्रमण को देख कर राजकुमार ने उससे इस विषय पर कोई वार्तालाप नहीं किया, यह कैसे संभव है? राजकुमार ने उस श्रमण से यह जाना होगा कि परममुक्त अवस्था कहीं बाहर नहीं मिलती। यह तो अपने भीतर ही है। परंतु उसे प्राप्त करने की ध्यान-विधि जाने बिना उस अवस्था तक कोई पहुँच नहीं पाता। घर बैठे यह विद्या प्राप्त नहीं हो सकती थी। इसकी खोज के लिए उन दिनों श्रमण परंपरा के जो भी आचार्य थे उनके पास जाकर इसे सीखना आवश्यक था। यह श्रमण भी स्वयं इसी प्रयत्न में लगा था।

कपिलवस्तु पर श्रमण परंपरा का गहरा प्रभाव था। इस कल्प के तीन पूर्व बुद्धों में से दो सम्यक संबुद्ध ककुच्छंद और कोणागमन के स्तूप वहां विद्यमान थे। श्रमण परंपरा की विपश्यना विद्या अवश्य लुप्त हो चुकी थी। परंतु ध्यान की परंपरा कायम थी। शाक्य देश के पूर्व की ओर कालाम गणतंत्र का आचार्य अलारक लाम इस विद्या का प्रसिद्ध मार्गदर्शक था। उसका एक केंद्र कपिलवस्तु में भी था। परंतु मुख्य केंद्र मगध में था। तपस्वी श्रमण से राजकुमार को यह विदित हुआ होगा कि आचार्य अलारक लाम इस समय मगध स्थित अपने मुख्य केंद्र में विहार कर रहे हैं। उनसे अंतर्मुखी होने की विद्या सीखने के लिए उसे घर छोड़ना आवश्यक था। राजकुमार ने गृहत्याग कर मगध में उनसे सातवां ध्यान सीखा। उससे ध्यानसुख मिला परंतु नितांत मुक्त अवस्था प्राप्त नहीं होने के कारण श्रमणसंस्कृति के दूसरे आचार्य उद्दक रामपुत्त के पास जाकर उससे आठवां ध्यान सीखा। परंतु उससे भी लक्ष्यपूर्ति नहीं हुई। तब छः वर्षों तक देह-दंडन की कठिन दुष्कर चर्या की। वह भी निष्फल रही। तदनंतर स्वयं खोज करते हुए शील, समाधि और प्रज्ञा की यह आठ अंग वाली विपश्यना विद्या ढूंढ़ निकाली। इसके द्वारा स्वयं भवमुक्त हुए, सम्यक संबुद्ध हुए। 'सम्यक संबोधि' की यह अवस्था शास्त्र पठन द्वारा उपलब्ध नहीं हुई। दार्शनिक बुद्धिकिलोल द्वारा नहीं मिली। किन्हीं गुरुजनों से भी प्राप्त नहीं हुई। मुक्तिदायिनी विपश्यना विद्या उस समय संसार से लुप्त हो चुकी होती है। अतः बोधिसत्व को स्वयं अपने श्रम से यह विद्या खोजनी होती है। और यही सिद्धार्थ गौतम ने किया और वे सम्यक संबुद्ध बने।

जब कोई व्यक्ति सम्यक संबोधि प्राप्त कर लेता है तो उसका हृदय अनंत मैत्री और अनंत करुणा से भर उठता है। इस कल्याणी विद्या को वह अधिकाधिक संख्या में योग्य पात्रों को बांटना चाहता है। इसी करुणभावना से प्रेरित होकर गौतम बुद्ध ने वाराणसी के मृगदाय उपवन में जाकर कपिलवस्तु से आए हुए अपने पांच तपस्वी साथियों को यह मुक्ति का मार्ग सर्वप्रथम सिखाया, जिससे कि वे भी अरहंत अवस्था प्राप्त कर भवमुक्त हो परम सुखलाभी हुए। तदनंतर तीन महीने के वर्षावास में वहीं रहते हुए पचपन अन्य मुमुक्षुओं को इसी मुक्ति के मार्ग का अभ्यास करवा कर उन्हें परम भवमुक्त अरहंत अवस्था प्राप्त कर सकने में सहायक बने।

यों जब साठ अरहंत तैयार हो गए तब उन्हें **चरथभिक्खवे चारिकं** का ऐतिहासिक धर्म-उद्बोधन दिया। अनेकों को इस कल्याणी विद्या का लाभ मिले, इस निमित्त उन्हें प्रेरित किया कि वे –

बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, लोकानुकम्पाय

–बहुतों के हित के लिए, बहुतों के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करते हुए स्थान-स्थान पर विचरण करें। दो भिक्षु एक साथ न जायँ। सब अलग-अलग विहार करें, अलग-अलग स्थानों पर धर्मचारिका करें ताकि अधिक से अधिक लोगों का भला हो। वे बहुतों के हितसुख के लिए **आदि में, मध्य में और अंत में**

कल्याणकारी परम परिशुद्ध और परम परिपूर्ण धर्म प्रकाशित करें।

धर्म का यह शुद्ध मार्ग शील से आरंभ होता है, यदि कोई केवल इसी का अभ्यास करले तो इस जीवन में भी सुखलाभी हो और मरणोपरांत देवलोक में जन्म लेकर दिव्य सुखलाभी हो। वह यदि सम्यक समाधि का भी अभ्यास करले तो इस जीवन में भी ध्यानसुखलाभी हो और मरणोपरांत ब्रह्मलोक में जन्म लेकर विपुल ब्राह्मी सुखलाभी हो। और यदि वह अपनी प्रज्ञा जगा कर सारे पूर्व संचित कर्मसंस्कारोंका क्षय करले तो यहां भी जब चाहे तब उपधिशेष निर्वाणिक निरोध समापत्ति का अमित सुख प्राप्त करे और मरणोपरांत भवसंसरण के दुःखों से नितांत विमुक्त होकर निरुपधिशेष परिनिर्वाण के परमसुख से लाभान्वित हो। यों आदि, मध्य और अंत में कल्याणकारीशील, समाधि और प्रज्ञा का यह आर्य अष्टांगिक मार्ग सर्वथा परिपूर्ण है। इस अर्थ में कि इसमें अन्य कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। यह नितांत परिशुद्ध है – इस अर्थ में कि इसमें से अशुद्ध मान कर कुछ भी निकालने की आवश्यकता नहीं है।

यों जिस विद्या से ये साठ अरहंत स्वयं हित-सुखलाभी हुए, उसे वे आजीवन अत्यंत करुणचित्त से बहुजनों में वितरित करते रहे। उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था **"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय"** ।

सम्यक संबुद्ध सिद्धार्थ गौतम ने अपने जीवन के शेष पैंतालीस वर्षों में ऐसे हजारों अरहंत प्रशिक्षक तैयार किये और उनके अतिरिक्त स्वयं भी दूर-दूर तक के जनपदों में शुद्ध धर्म का परम शांतिसुखदायी अमृत रस बांटने में लगे रहे। महाकारुणिक बुद्ध ने अपना शेष जीवन अहर्निश सुख बांटने और बँटवाने में ही लगाया। उनके पश्चात इस श्रमण परंपरा ने सदियों तक लोगों को विपश्यना का मुक्तिसुख बांटा। बहुजन को सुख बांटने वाले ऐसे बहुजन हितकारी बुद्ध पर यदि हम यह लांछन लगाते हैं कि उन्होंने परोपकार के उद्देश्य से घर नहीं छोड़ा और जो परम सत्य उन्हें घर बैठे अपने भीतर ज्ञात हो सकता था, उसके लिए उन्होंने व्यर्थ ही घर छोड़ा तो इस परंपरा के पूर्ण इतिहास को और बुद्ध की वाणी तथा विपश्यना के सुखद परिणामों को जानने वाले लोग हमें किस नजर से देखेंगे? हम ऐसी निराधार लांछन लगाने की भूलें सदियों से करते चले आ रहे हैं। पड़ोसी देशों के लोगों के सामने हम अपने आपको हास्यास्पद बनाए जा रहे हैं। समय आ गया है कि अब होश में आएं और ऐसी गलतियों को न दोहराएं। इसी में हमारा कल्याण है, हमारी प्रतिष्ठा है।

*** *** ***

भगवान बुद्ध पर यह भी एक लांछन लयाया जाता है कि अपनी सुंदरी युवा पत्नी को, नवजात शिशु को और वृद्ध माता-पिता को अश्रुमुख छोड़ कर उनका गृहत्यागना उचित नहीं था। वे यह भूल जाते हैं कि गृही जीवन जीते हुए वे जो सांसारिक सुख प्रदान कर सकते थे, उससे कहीं अधिक और अतुलनीय भवविमुक्ति का परम सुख उन्हें प्रदान किया। उनके परिवार का एक भी व्यक्ति इस विमुक्तिसुख से वंचित नहीं रहा। सामान्य सांसारिक सुख की तुलना में विकार-विमुक्ति का सुख कितना महान है यह विपश्यना के गंभीर अनुभवों से प्रत्यक्ष जाना जाता है।

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का

गृहस्थ को निर्वाण की प्राप्ति

"भंते! क्या कोई गृहस्थ है जिसने अपने घर पर सभी कामों का भोग करते, स्त्री और बालबच्चों के साथ रहते, रुपये-पैसे के फेर में रहते और मणि-मोती-सोना के आभूषण को सिर में लगाते हुए ही परम शांत पद निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया हो?"

"महाराज! न एक सौ, न दो सौ, न तीन, चार, पांच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड़, न लाख करोड़, ऐसे गृहस्थ हो चुके हैं, जिन्होंने निर्वाण का साक्षात्कार किया है। महाराज! दस, बीस, सौ, या हजार की गिनती को तो छोड़ दें, मैं किस तरह आपको समझाऊं?"

– मिलिन्दपञ्हो ५.२

मंगल मृत्यु

* जोधपुर से सूचना मिली है कि नागौर निवासी श्री सरदारमल दुग्गड़ ने जोधपुर के प्राकृतिक स्वास्थ्य केंद्र में बड़ी शांतिपूर्वक शरीर त्याग किया।

* वर्सोवा के श्री गोपाळ रा. पाटणकर का हृदयगति रुकने से देहावसान हुआ परंतु उनके चेहरे पर जरा भी बेचैनी नहीं थी।

* पुलगांव (वर्धा) के श्री रामटेके बाबा को यद्यपि अंतिम समय घनीभूत संवेदना थी परंतु मन शांत था और अंत समय तक समता बनी रही।

* नाशिक की सौ. कमलगुलाबराव फुलझेले को दस वर्ष से कैंसर का कष्ट था। पर नियमित अभ्यास करती हुई अंतिम क्षण तक शांत बनी रही। मृत्यु के ७ घंटे बाद भी चेहरा सौम्य बना हुआ था।

* इंगलैंड के राहुल बारोट की मां नर्सिंग होम में यद्यपि अत्यधिक पीड़ा से ग्रस्त थी फिर भी मृत्यु के समय चेहरे पर जो सौम्य मुस्कराहट फैली वह बड़ी प्रेरणाजनक थी।

* करजगांव के किसनराव मोहोड ने पकी हुई अवस्था में अत्यंत शांतचित्त से शरीर त्यागा।

* इंदौर के श्री जगदीश रोकड़े जो कि ८ शिविर किये थे, आकस्मिक दुर्घटना के शिकार हुए फिर भी प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि मृत्यु के समय वे बिल्कुल शांत थे।

* नागपुर के श्री पी. एस. खिल्लरकर की हृदयाघात से मृत्यु हुई फिर भी चेहरे पर अभूतपूर्व शांति विराजमान थी।

* विसापुर (चंद्रपुर) के पूज्य भदंत मुदितानंद जो कि लखीमपुर (खीरी) के रहने वाले थे परंतु महाराष्ट्र में आकर अनेक शिविरों में भाग लिया, दीर्घ शिविर भी किये थे। ७० वर्ष की पकी अवस्था में अस्थमा की तकलीफ के बावजूद उनकी मृत्यु पूर्ण सजगता और बड़ी शांतिपूर्वक हुई। अंतिम समय तक उनके मुँह से मंगल मैत्री के शब्द निकलते रहे।

सारे प्राणी सुखी हों! सब का मंगल हो!

आवश्यकता है

विपश्यना साहित्य का दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवाद के योग्य और अनुभवी साधक अनुवादकों की आवश्यकता है जो कि अंग्रेजी से तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम में अनुवाद कर सकें।

इच्छुक व्यक्ति अपना नाम-पता, उम्र, व्यवसाय, शिक्षा और कार्य-अनुभव और कितने शिविर किये हैं? आदि का विवरण देते हुए श्री एस. अडवियप्पाजी से धम्मगिरि, इगतपुरी के पते पर संपर्क कर सकते हैं। सैम्पल के रूप में 'आर्ट ऑफ लिविंग' और 'डिस्कोर्स समरी' के एक-दो चैप्टर का अनुवाद करके भी भेज सकते हैं। धम्मगिरि का फैक्स नं. ०२५५३- ८४१७६, E-mail: <dhamma@vsnl.com> है।

नए उत्तरदायित्व :

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री राम सहाय निम

२. श्री ओम शंकर श्रीवास्तव

दोहे धर्म के

समझ लिया निज रोग को, समझा रोग निदान।
पर कैसे औषध बिना, मिटे रोग नादान॥

धन वैभव उपभोग सब, सचमुच दुःख प्रमाण।
अनासक्त हो भोगते, बने सुखों की खान॥

जहां राग तँह दुःख है, पीड़ा है परिताप।
वीतराग के ही मिटें, पाप शाप संताप॥

राग जगे तो द्वेष का, बढ़ता जाय प्रभाव।
राग मिटे तो द्वेष का, मिटता जाय स्वभाव॥

कितने गहरे दुःख में, उलझा सकल जहान।
दुःख निवारण कर लिया, कारण जान सुजान॥

केवल दर्शन ज्ञान हो, प्रतिक्रिया ना होय।
तो पावें निर्वाण पद, सफल साधना होय॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास

• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
☎- ४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर,
पुणे-४११००२. ☎-४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५,• पटना- ६७१४४२,
• वाराणसी- ३५२३३१, • बैंगलोर- २२१५३८९,• चेन्नई- ४९८२३१५,
• कलकत्ता-२४३४८७४
की मंगल कामनाओंसहित

दूहा धरम रा

कर्‌यो अमंगल ही सदा, मन रो रह्यो गुलाम।
मिली सुमंगल साधना, मन पर लगी लगाम॥

जग मँह सुख स्यूं जीण री, कळा मिली अणमोल।
द्वेस दूर कर, प्यार को, इमरत अंदर घोळ॥

ढोल मँजीरा झांझ स्यूं, सही न बंदन होय।
अंतर जगै विपस्सना, सही बंदना सोय॥

जागै विमल विपस्सना, कटै करम कसाय।
अंतरमन निरमल हुवै, मंगळ स्यूं भर ज्याय॥

जीवन जीणै री कळा, सुद्ध धरम संजोग।
म्रित्यु मरणै री कळा, विपस्सना रै जोग॥

जनम मरण रै रोग री, ओसध मिली अमोल।
धन्य बुद्ध जी जगत नै, इमरत दीन्यो घोळ॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स

३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ८४०८६, ८४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४४, भाद्रपद पूर्णिमा, १३ सितंबर, २०००**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2000,

Concessional rates of Postage under Licenced to post without Prepayment
Posting day- **Purnima of Every Month, Posted at Igatpuri-422403, Dist. Nashik**

If not deliverd please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ८४०७६
फैक्स : (०२५५३) ८४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
E-mail: <dhamma@vsnl.com>